

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

सारांश

महर्षि पतंजलि ने सर्वप्रथम योग को व्यवस्थिति स्वरूप प्रदान किया। भारतीय दार्शनिक चिन्तनधारा में 'योग' मुख्य रूप से वर्णित है। सांख्य दर्शन और योगदर्शन में तो योग की विशेष व्याख्या की गई है। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित 'अष्टांग योग' मनुष्य के अन्दर सुप्त प्रायः पड़ी अन्तदृष्टि को जागृत करता है। यह न केवल मानव का आध्यात्मिक व शारीरिक विकास करता है अपितु विश्वशान्ति स्थापित करने में भी सक्षम है। महर्षि पतंजलि ने सर्वप्रथम योग का परिष्कृत लक्षण प्रस्तुत किया फयोगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।" अर्थात् चित्त की प्रमाणादि वृत्तियों का निरोध (रुक जाना) योग कहलाता है। भाष्यकार इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि प्रति में सत्व, रज और तम तीन गुण रहते हैं। उनमें लाघव तथा प्रकाश स्वभाव वाला जो सत्वगुण है, उसका परिणामविशेष चित्त कहलाता है। उस चित्त की असंक्षय वृत्तियों होने पर भी प्रमाणादि पाँच रूप में संकलित है। ये समस्त चित्तवृत्तियाँ हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और समृति। ये समस्त चित्तवृत्तियाँ जिस अवस्था विशेष में निरुद्ध हो जाती हैं, वह अवस्थाविशेष योग कहा जाता है। यह योग ही समाधि है।

अनीता नैन

सहायक प्राध्यापक,
संस्कृत विभाग,
सेठ बनारसी दास कालेज
ऑफ एजुकेशन
कुरुक्षेत्र, हरयाणा

मुख्य शब्द : चित्तवृत्ति, आत्मदर्शन, सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात, प्राणायाम, प्रत्याहार, प्रमाणवृत्ति, एकीकरण।

प्रस्तावना

आधुनिक युग में मनुष्य मानसिक एवं शारीरिक रूप से रूग्ण होता जा रहा है। इसका कारण है—जीवन में भौतिकता की अधिकता होना। मनुष्य में धन के प्रति लोलुपता बढ़ती जा रही है। आज मनुष्य के पास सु-सुविधाओं का अम्बार है किन्तु वह मानसिक दबाव, तनाव व चिन्ताओं से घिरा हुआ है। आज का मानव पारिवारिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिशानियों में उलझकर जी रहा है। इससे उसका स्वास्थ्य प्रभावित होता है। ऐसे समय पर योग का मजहत्व हमारे लिए दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। प्राचीनकाल से ही ऋषियों का उद्घोष रहा है कि पशरीमाद्यं लुधर्मसाधनम् " अर्थात् जीवन में कर्म से लकर आनन्द प्राप्त करने तक का एकमात्र साधन स्वस्थ शरीर है। इसके लिए आवश्यक है कि हम योग को अपनी दिनचर्या का एक अभिन्न अंग बना लें। योग के द्वारा असाध्य रोगों का उपचार भी समीव है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि योग क्या है? क्या कुछ आसनों अथवा व्यायाम को योग कहा जा सकता है? इन प्रश्नों के समाधान के लिए हमें योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना होगा। यही इस शोध-निबन्ध का मुख्य उद्देश्य है।

'योग' शब्द का अर्थ एवं व्युत्पत्ति

'योग' शब्द युज् धतु से करण अर्थ में 'घष्ठा' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। 'युज्' का अर्थ है— जोड़ना या मिलाना। इस प्रकार योग का व्यापक अर्थ है—जीवत्मा और परमात्मा का एकीकरण। योग ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य इस भव-सागर को पार करके परमात्मा से एकीकरण का सकता है।

योग का इतिहास

योग का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। यह नितान्त प्रामाणिक तथ्य है। कि योग मूल रूप से भारत की देने है जो कि क्रमशः संशोधित होता हुआ आज आधुनिक रूप में हमारे सामने विद्यमान है। योग की यह विकास-यात्रा निम्नलिखित प्रकार से दी जा सकती है।

प्रागैतिहासिक युग में योग का स्वरूप

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि योग का इतिहास सिन्धु घाटी की सभ्यता से जुड़ा हुआ है जो लगभग 300 ई० पूर्व मानी जाती है। यद्यपि उस काल की भाषा से हम अनभिज्ञ हैं कि न्तु उत्तन से प्राप्त मूर्तियों के आसनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता के समय योग का प्रचलन था।

वैदिककाल में योग का स्वरूप

वैदिक संहिताओं से लेकर उपनिषदों एवं पुराणों तक में योग विषयक प्रमाण पाए जाते हैं। अनेक वैदिक ऋचाएं 'योग' के विभिन्न पक्षों से उद्घाटित करती हैं। ऋग्वेद के 1.18.7, 1.34.9, 10.13 आदि मन्त्रा योग विषयक उद्घोषणा करते हैं। यजुर्वेद के 11वें अध्याय के 1 से 5 तक के मन्त्रों में योग का उत्कृष्ट स्वरूप प्राप्त होता है। यथा—

‘युष्टजते मनः उत युष्टयते

धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।

ऋषि दयानन्द ने युष्टजते का अर्थ स्थिर करना कहा है। मन को स्थिर करने का भाव 'युष्टजते मनः' में है। बुद्धियों को स्थिर करने का भाव 'युष्टजते धिया' में है और 'विपश्चित' शब्द मेधवी सद्-असद् विवेकी व्यक्तित्व का बोध कराता है याज्ञवल्क्य स्मृति में याज्ञवल्क्य ऋषि ने योग विषयक आ' वान करते हुए कहा है—'अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।'² अर्थात् योग के द्वारा आत्मदर्शन करना ही परमधर्म है। इस प्रकार उपरोक्त तथ्य वैदिक समाज की योगविषयक जागरूक प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं।

महर्षि पतंजलि के अनुसार योग का स्वरूप

महर्षि पतंजलि ने सर्वप्रथम योग को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। भारतीय दार्शनिक चिन्तनधारा में 'योग' मुख्य रूप से वर्णित है। सांख्य दर्शन और योगदर्शन में तो योग की विशेष व्याख्या की गई महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित 'अष्टांग योग' मनुष्य के अन्दर सुप्त प्रायः पड़ी अन्तर्दृष्टि को जागृत करता है। यह न केवल मानव का आध्यात्मिक व शारीरिक विकास करता है अपितु विश्वशान्ति स्थापित करने में भी सक्षम है। महर्षि पतंजलि ने सर्वप्रथम योग का परिष्ठ लक्षण प्रस्तुत किया—'फ्रयोगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'³ अर्थात् चित्त की प्रमाणिक वृत्तियों का निरोध (रुक जाना) योग कहलाता है। भाष्यकार इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि प्रति में सत्व, रज और तम तीन गुण रहते हैं। उनमें लाघव तथा प्रकाश स्वभाव वाला जो सत्वगुण है, उसका परिणामविशेष चित्त कहलाता है। उस चित्त की असंख्य वृत्तियाँ होने पर भी प्रमाणादि पाँच रूप में संकलित हैं। ये समस्त चित्तवृत्तियाँ हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।³ ये समस्त चित्तवृत्तियाँ जिस अवसी विशेष में निरुद्ध हो जाती हैं, वह अवस्थाविशेष योग कहा जाता है। यह योग ही समाधि है।⁴ योग संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात के भेद से दो प्रकार का होता है।

सम्प्रज्ञात समाधि

इसका लक्षण है—
पवित्तकंविचारानन्दाऋस्मितारूपानुगमात्संप्रज्ञातः⁶ अर्थात् वितर्क, विचार, आनन्द तथा अस्मिता के स्वरूप के सम्बन्ध से जो चित्तवृत्ति का निरोध होता है, वह सम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है। इस समाधि में किसी न किसी ध्येय का आलम्बन तथा बीजभूत अज्ञान विद्यमान रहता है इसलिए इसे सालम्बन तथा सबीज समाधि भी कहते हैं।

असम्प्रज्ञात समाधि

इसका लक्षण है 'विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार शेषोऋन्यः' अर्थात् पूर्वोक्त वितर्कादि भावनारूप वृत्ति के विराम अर्थात् अभाव के कारणरूप (प्रत्यय) जो परवैराग्य का अभ्यासपूर्वक वृत्तिहीन संस्कार स्वरूप से चित्त की वह स्थिति विशेष सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। चित्त की यह संस्कारशेष अवस्था प्राप्त होना सहज नहीं है, किन्तु निरन्तर वैराग्य के सतत अभ्यास से यह प्राप्त हो जाती है। इसमें चित्त निरालम्ब होता हुआ, जन्म-मरण की बीजभूत अविद्या का अभाव हो जाता है। अतः इससे निर्बीज समाधि भी कहते हैं। इस अवस्था में योगी का चित्त अत्य निवृत्तितक हो जाता है। महर्षि पतंजलि ने 'अष्टांग योग' पर बल दिया है। उनके अनुसार इसका लक्षण है।

'यमनियामऋसनप्राणायामप्रत्याहारध्यानसमाधयोऋष्टा वा निर अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धरणा, ध्यान, तप्ति सम्प्रज्ञात समाधि ये आठ अंग असम्प्रज्ञात समाधि अर्थात् योग है।

श्रीमद्भगद्गीता के अनुसार योग का स्वरूप

गीता में योग का विस्तृत विवेचन किया गया है, गीता का मुख्य संदेश है—निष्काम कर्म। निष्काम का अर्थ हे कामना रहित अर्थात् तटस्थ होकर भगवान की इच्छा के अनुसार कर्म करना है। भगवान की इच्छानुसार कर्म भगवान से तादात्म्य की स्थिति में ही हो सकता है। इसी तादात्म्य को श्री षण भगवान् योग का नाम देते हुए कहते हैं—'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् कर्मों में कुशलता योग कहलाती है। जय और पराजय की समस्त आत्तिफ त्यागकर समभाव से अपना कर्म करना चाहिए। कर्मों में ऐसी समता योग कहलाती है।⁷ श्री कृष्ण भगवान् के अनुसार योग तीन प्रकार का है— ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग।

जो व्यक्ति व्यवहारिक ज्ञान तथा दर्शन द्वारा वस्तुओं का चिन्तन और मनन करना चाहते हैं। वे ज्ञानयोग का आश्रय लेते हैं। कर्मयोगी मनुष्य निष्काम कर्म करते हुए आत्मसाक्षात्कार में सफल हो सकते हैं। जो व्यक्ति भक्तियोग का सहारा लेकर परमसत्य को जानने का प्रयास करते हैं उन्हें निःसन्देह सफलता प्राप्त होती है। भक्तियोग भौतिक मोह की कठिन ग्रंथि को भेदता है और भक्त को परम सत्य को समझने की अवस्था प्राप्त होती है। इस प्रकार भगवद्गीता में वर्णित योग के द्वारा मनुष्य को अपने मन पर नियन्त्रण करने का गुण प्राप्त हो जाता है।

योग के प्रकार

योग के द्वारा मनुष्य न केवल शारीरिक व्याधियों से बच सकता है अपितु वह अपना मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास भी कर सकता है। 'भोग से योग' तक में सफल होने के लिए निरन्तर अभ्यास को आवश्यकता होती है। योग शारीरिक क्रियाओं के साथ-साथ मानसिक सामंजस्य बिठाना भी अति आवश्यक है। इस दृष्टि से योग को मुख्यतः तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है शारीरिक योग, मानसिक योग, आध्यात्मिक योग।

शारीरिक योग

शारीरिक योग में शरीर के तीन प्रकार होते हैं—स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर। इनमें स्थूल शरीर बाहरी आवरण को कहा जाता है, जो दृश्यमान है जबकि सूक्ष्म और कारण शरीर अदृश्य होता है। इन तीनों शरीरों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। व्यक्ति का भोग, योग और मोक्ष इन तीनों शरीरों की सक्रियता से ही सिद्ध होता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में शरीर के पंचकोषों में वर्गीकृत किया है—अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, ज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष। स्थूल शरीर और उसकी क्रियाओं को अन्नमय कोष के रूप में, सूक्ष्म शरीर के क्रियाओं को प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष के रूप में चिह्नित किया गया है। योगचर्या सर्वप्रथम अन्नमय स्थूल शरीर को नियमित और ऊर्जावान बनाती है। स्वस्थ मनुष्य वहीं होता है जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दृष्टि से स्वस्थ हो। गीता में श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को कहा है कि आहार, बिहार की संयुक्तता, कर्मों में सुचेष्टा तथा शयन और जागरण जिसके तर्कयुक्त अर्थपूर्ण हो जाते हैं उसका योगसाधन फलीभूत होता।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए आहार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आहार हमारी इन्द्रियों को पुष्ट करता है, हमारे प्राणों को बल प्रदान करता है और मन की प्रवृत्तियों का भी पोषण करता है। शास्त्रों में वर्णित—हित्भुक्, मित्भुक्, ऋत्भुक्, अर्थात् अपनी प्रगति के अनुसार हितकारी, उचित मात्रा में एवं ऋतु के अनुकूल भोजन करना चाहिए, एक स्मरणीय सिद्धांत है। उचित आहार के साथ योग की विभिन्न शारीरिक क्रियायें स्वास्थ्य को उत्तमता प्रदान करती हैं। शारीरिक योग में विभिन्न यौगिक क्रियायें की जाती हैं। यथा—आसन, प्राणायाम, तप, मुद्राबंध, षट्कर्म आदि के द्वारा रक्त, प्राण, नाडी आदि का शोधन इत्यादि। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रयुक्त—‘अष्टांग योग’ के प्रथम दो सोपान यम और नियम वस्तुतः स्वस्थ शरीर का आधार है। उन्होंने क्रिया योग में तप को भी महत्वपूर्ण माना है। गीता में भी तप पर बल देते हुए इसे शारीरिक, वाचिक, और मानसिक तीन प्रकार का माना है। इस प्रकार आसन और व्यायाम शरीर को चिरस्वस्थ बनाये रहते हैं। योगासनों के द्वारा विभिन्न आसाध्य रोगों का उपचार सम्भव है। इस प्रकार आज के भौतिकतावादी युग में प्राणायाम इत्यादि योगासन अपनाकर शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

मानसिक योग

योगशास्त्र में मन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। व्याधिग्रस्त मन शान्ति और आनन्द की प्राप्ति नहीं कर सकता। महर्षि पतंजलि ने चित्त की पांच भूमियों का वर्णन किया है—क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध। चिन्ता, शोक और व्यग्रता की अवस्था में पहुँचकर जब हम बहकें—बहकें से होते हैं जब हम चित्त की क्षिप्त अवस्था में होते हैं। ऐसा चित्त व्यर्थ की गतिविधियों में भटकता रहता है। शारीरिक या मानसिक आघात के कारण जा अर्धचेतन की स्थिति बनती है, वह चित्त की मूढ भूमि कहलाती है। इस अवस्था में क्रोध का आवेग होने के कारण मन की प्रवृत्ति नकारात्मक हो जाती है। जब मनुष्य लाभ—हानि, सुख—दुःख, मान—अपमान आदि

सांसारिक व्यवहारों में आशिक तौर पर संवेगों को नियंत्रित करने लगता है। तब वह चित्त की विक्षिप्त भूमि से जुड़ता है। समग्रता से किसी एक विषय में लग जाना चित्त की एकाग्र भूमि कहलाती है। जिस अवस्था में चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है, वह चित्त की निरुद्ध भूमि है। चित्त भूमियों के साथ—साथ चित्त की वृत्तियों का वर्गीकरण करते हुए पतंजलि योग दर्शन में इन्हें पाँच माना गया है—प्रमाणवृत्ति, विपर्ययवृत्ति, विकल्पवृत्ति, निद्रवृत्ति और स्मृतिवृत्ति। चित्त की ये वृत्तियों की मानव को विचलित करती रहती हैं। ये वृत्तियाँ विषयों में लिप्त होकर वासनओं से आबध्य हो जाती हैं। किन्तु यदि इन्हें शान्त रूप से अपने भावों के अनुकूल लिया जाये तो इनका सुखद परिणाम सामने आता है। हमारा सम्पूर्ण लोक व्यवहार और मानसिक व्यापार इन वृत्तियों के द्वारा ही सम्पादित होता है। अतः इनका सकारात्मक एवं नियंत्रित होना अत्यन्त आवश्यक है। योग शास्त्र में चित्तवृत्तियों के संयमन के लिए वैज्ञानिक प्रक्रिया का व्याख्यान है। मन के नियन्त्रण के लिए जो योग किया जाता है वह मानसिक योग कहलाता है। नियन्त्रण अभ्यास और वैराग्य के अवलम्बन से चित्तवृत्तियाँ स्थिर हो जाती हैं और मनतृष्णा से रहित हो जाता है। जब अर्जुन मोहग्रस्त हुआ तब योगेश्वर श्रीकृष्ण ने उसे भी अभ्यास और वैराग्य का अवलम्बन करने की प्रेरणा दी थी। लेकिन यह अभ्यास दीर्घकाल तक निरन्तर विश्वास एवं श्रद्धा पूर्वक किया जाना चाहिए। तभी सफलता सम्भव है। बचैनी, अकारण क्रोध, अवसाद, व्याकुलता, चिड़चिड़ापन, मानसिक एकाग्रता का अभाव, अकर्मण्यता, अनिद्रा, अनेक मानसिक व्याधियाँ योग के द्वारा उपचारित की जा सकती हैं। तनाव से मुक्ति के लिए ‘ध्यान योग’ सर्वोत्तम पद्धति है। पाश्चात्य मनोचिकित्सक पद्धति का अनुसरण करने लगे हैं। धारण और ध्यान के रूप में मन को तेजस्वी और ओजस्वी बनाने का उपाय योगशास्त्र की महान देने है। इसके द्वारा व्यक्ति जय—पराजय, लाभ—हानि, मान—अपमान के अवसरों पर उत्पन्न होने वाले अतिरेक को नियंत्रित कर सकता है। ध्यान से व्यक्ति धैर्यशाली बन सकता है।

आध्यात्मिक योग

‘योग’ का प्रमुख ध्येय है— परमात्मा से एकाकीकरण एवं कैवल्य की प्राप्ति। इसको प्राप्त करने के लिए ही योग का आविर्भाव हुआ। मन की निर्णय प्रक्रिया का नाम बुद्धि है। बुद्धि का स्थिर हो जाना ही अध्यात्म में प्रवेश कराता है। बुद्धि का प्राथमिक परिष्कार सांसारिक सफलताओं का प्रदायक है। बुद्धि का माध्यमिक चित्तवृत्तियों के निरोध में सहायक है तथा बुद्धि का उच्च परिष्कार समाधि के रूप में अभिव्यक्त होता है। श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ के रूप में कुद्धि की इसी स्थिति का वर्णन किया है। इस अवस्था में पहुँचकर बुद्धि निर्मल हो जाती है। निर्मल बुद्ध के द्वारा अविवादित क्लेशों का सुगतमा से निराकरण हो जाता है। इन अविवादित क्लेशों के हट जाने से साधक सुगमता से समाधिस्थ हो जाता है। इस प्रकार ध्यान से समाधि में प्रवेश कर रही बुद्धि प्रस्तुतः संसार से आध्यात्म में प्रवेश कर रही होती है। निबीज समाधि में समस्त संस्कार दुग्ध बीजवत् हो जाते हैं। इस

समाधि में आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप से साक्षात्कार करती हुयी स्वरूपावस्थित हो जाती है। यही मोक्ष है। समस्त दुःखों का यहाँ उपराम हो जाता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार योग के द्वारा भौतिक से आध्यात्मिक जीवन तक का संरक्षण किया जा सकता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समाज को विकृति से बचाने के लिए योग एक सर्वोत्तम साधन है। योग मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहायक है। वर्तमान युग में योग का अवलम्बन लेकर सामाजिक, पारिवारिक और विश्विक भ्रातृत्व भावना का विकास किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वामन शिवरामआप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोष, पृ०-839।
2. दृष्टव्य-यजुर्वेद-8.2, 6.20, 22.33, 1.20, 7.27, 13.19,।
3. याग्यवल्क्या स्मृति-1.8।
4. पातञ्जलयोगदर्शनम् (व्यासभाष्य), 1.2, पृ०-8।
5. वही, पृ०-8।
6. योग: समाधि वही, पृ०-17।
7. वही, 1.17।